हिन्दी सिनेमाः समय, संस्कृति और भाषा

डॉ. जीत सिंह
एसो. प्रो. हिन्दी
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बादलपुर (गौ.बु.नगर)

सारांश

"साहित्य समाज का दर्पण है" यह सर्वमान्य कथन है किन्तु आधुनिक युग में साहित्य की यह धारा परिवर्तित होकर हिन्दी सिनेमा का रुप धारण कर चुकी है तथा कल्पनाशीलता के समिश्रण के साथ हिन्दी सिनेमा समाज का दर्पण बनता जा रहा है बहुविध आलोचनाओं के साथ-साथ यह भी स्वीकारणीय तथ्य है कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार, लोकप्रियता और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को पहचान दिलाने में हिन्दी सिनेमा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मुख्य शब्द

हिन्दी सिनेमा, लोकप्रियता, संस्कृति, समाज, सम्प्रेषण, प्रतिबिम्ब, विश्वव्यापी भूमिका

भारतीय कला विधाएं प्रत्येक युग में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है। इन कला विधाओं में निरन्तर नए-नए प्रयोग होते रहे हैं और उसमें परिमार्जन भी होता रहा है ऐसी ही एक कला विधा है जो सर्वाधिक प्रचलित है, वह है- सिनेमा।

सिनेमा का इतिहास बहुत पुराना न होते हुए भी इतने कम समय में समाज को जिस तरह प्रभावित किया है, वह अकल्पनीय है।

सिनेमा हमारे सामाजिक जीवन को इस तरह प्रभावित किया है कि हम उसी के काल्पनिक दुनियाँ में सैर करते हुए वास्तविक धरातल की तलाश करते हैं। सिनेमा न केवल समाज को बल्कि समाज के प्रत्येक बिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित किया है चाहे वह हमारी संस्कृति हो, जीवन शैली हो, साहित्य हो, परम्परा हो या आर्थिक व्यवस्था सबको नया आयाम दिया है।

हिन्दी सिनेमा आरम्भ से ही एक सीमा तक समाज का आईना रहा है जो समाज की गतिविधियों को रेखांकित करता आया है। पिछले पांच दशकों की बात करें तो देखने को मिलेगा कि हिन्दी सिनेमा ने शहरी दर्शकों को ही नहीं गाँव के दर्शकों को भी प्रभावित किया है। आज हिन्दी के व्यापक लोकप्रियता और इसे संप्रेषण के माध्यम के रूप में मिली आम स्वीकृति किसी संवैधानिक प्रावधान या सरकारी दबाव के परिणाम नहीं है। मनोरंजन और सिनेमा की दुनिया ने इसे व्यापार और आर्थिक लाभ की भाषा के रूप में जिस तरह विस्मयजनक रूप से शनैः शनैः स्थापित किया है उससे हिन्दी सिनेमा निश्चित ही हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका निर्वाह कर रहा है। उनकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेषणीय और ग्राह्य है।

सिनेमा में वही प्रतिबिंबित होता है जो समाज में घटता है या घट रहा होता है। शायद इसी कारण इसे समाज का दर्पण कहा गया है। एक अति महत्वपूर्ण परिवर्तन सिनेमा के क्षेत्र में यह हुआ कि 7 जुलाई 1896 ई. को जब ल्यूमियरे भाइयों कर सिनेमैटोग्राफी ने पहली बार छह मूक लघु फिल्मों का प्रदर्शन बंबई के वाटसन होटल में किया तो किसी ने सोचा भी नहीं था कि यह प्रदर्शन भारतीय मनोरंजन (सिनेमा) में एक मील का पत्थर साबित होगा। इसी के पश्चात भारत में पहली बार किसी भारतीय (हरिश्चन्द्र भटवाडेकर) ने सेल्यूलाइड कैमरे का प्रयोग कर दो लघु फिल्मों को शूट कर उन्हें प्रदर्शित किया। इसी से भारत में चलती-फिरती फिल्मों की शुरूआत हुई।

भारत में सिनेमा की शुरूआत 1913 ई. में 'धूंडीराज गोविन्द फाल्के' की फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' से हुई। यह प्रथम भारतीय ध्वनि रहित फिल्म थी और इसी फिल्म के निर्माण स्वरूप 'दादा साहब फाल्के' को भारतीय सिनेमा का पितामह स्वीकार किया गया। इस फिल्म के अतिरिक्त दादा साहब फाल्के ने 'भस्मासुर मोहनी', 'सत्यवान सावित्री' और लंकादहन जैसी धार्मिक परम्परा से सजी समाज को प्रभावित करने वाली फिल्मों का निर्माण किया। भारत में पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' बनी जिसके निर्माता इंपीरियल फिल्म कंपनी और निर्देशक अर्दरशीर ईरानी थे। यह फिल्म 14 मार्च 1931 को बंबई के मैजेस्टिक सिनेमा में रिलीज हुई। इस बोलती फिल्म ने सिनेमा के पूरे तौर-तरीकों में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया। बोलती फिल्मों के क्रेज के कारण ही 1935 ई. के बाद मूक फिल्मों का बनना भारत में लगभग खत्म सा हो गया। हिन्दी सिनेमा की कोई भी कहानी क्यों न हो उसमें समाज, संस्कृति और मानवता का वास्तविक स्वरूप अवश्य दिखाया जाता है चाहे वह कितनी भी काल्पनिक क्यों न हो किन्तु उसकी पृष्ठ भूमि समाज पर ही आधारित होती है।

हिन्दी को विश्व स्तरीय पहचान दिलाने में हिन्दी सिनेमा के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। यह एक ऐसे माध्यम के रूप में हमारे बीच है, जो अपने आप में कई कलाओं और संस्कृतियों को समेटे हुए है। **'डॉ. पीटर बारानिकोव' के अनुसार- "हिन्दी सिनेमा ने रूस और दूसरे देशों में भी लोगों को हिन्दी से जुड़ने का काम किया है।"**

समय के साथ-साथ हिन्दी सिनेमा की तस्वीर भी बदल रही है। आज फिल्मों को लेकर नये-नये प्रयोग ज्यादा हो रहे हैं। जब हिन्दी फिल्मों का सफर शुरू हुआ तो हिन्दी भाषा अपने असली रूप में थी पर आज 'पानसिंह तोमर', 'उड़ता पंजाब', 'तनु वेड्स मन्नु', 'गैंग्स ऑफ बसेपुर' जैसी फिल्मों में हिन्दी के साथ ही क्षेत्रीय भाषा का इस्तेमाल होने लगा अब फिल्मों में भारत के अलग-अलग राज्यों की भाषा की सोंधी खुशबू आती है। यह एक अच्छी बात रही है कि हिन्दी के साथ उर्दू का समावेश करके सिनेमा को एक नया प्रभाव देने की कोशिश की गयी है। वह स्वागतेय भी रही क्योंकि उर्दू तहजीब की भाषा है। उसका अपना परिमार्जन है। फिल्मों में संवाद लेखन करने वाले, गीत लेखन करने वाले, उर्दू के साहित्यकार, शायरों का भी लम्बें समय बने रहना और सफल होना इस बात को प्रभावित करता है कि दर्शकों ने इस नवोन्मेष का स्वागत किया।

हालांकि साहित्यकारों में मुंशी प्रेमचन्द से लेकर अमृतलाल नागर, गोपालदास 'नीरज',

शरद जोशी, फणिश्वरनाथ 'रेणू' आदि का सरोकार भी हिन्दी सिनेमा से जुड़ा। वक्त-वक्त पर ये विभूतियाँ हिन्दी सिनेमा का हिस्सा बनी। 'नीरज' जी ने देवआनन्द के लिए अनेक गीत लिखे। 'शरद जोशी' ने फिल्में और संवाद लिखे, 'रेणु' की कहानी पर 'तीसरी कसम' फिल्म बनी, अमृतलाल नागर की बेटी डॉ. अचला नागर ने 'निकाह' से लेकर 'बागवान' जैसी यादगार फिल्में लिखीं। 'मन्नू भण्डारी' और 'राजेन्द्र यादव' की कृतियों पर फिल्में बनी, पण्डित भवानी प्रसाद मिश्र दक्षिण में लम्बे समय तक एवीएम के लिए लिखते रहे लेकिन सकारात्मक विचारों की विरूद्ध प्रतिरोधी विचार ज्यादा प्रबल था लिहाजा वही काबिल हुआ।

'मण्डी', 'जुनून', 'भूमिका', 'निशान्त', 'अंकुर' जैसी फिल्में हमें इस बात का भरोसा दिलाती हैं कि कम से कम एक लड़ाई भाषा के सम्मान के लिए प्रबुद्ध साहित्यकारों, लेखकों और कलाकारों द्वारा जारी रखी गयी। यह काम फिर उनके समकालीनों में, सुधीर मिश्रा, प्रकाश झा, केतन मेहता, सईद अख्तर मिर्जा ने भी किया।

बी.बार. चोपड़ा की 'महाभारत' के संवाद लेखन में 'डॉ. राही मासूम रजा' के योगदान को सभी याद करते हैं। इसी तरह रामानन्द ने भी 'रामायण' धारावाहिक बनाते हुए उसके संवादों पर विशेष जोर दिया। इसी तरह हिन्दी सिनेमा में फिल्म-संगीत भी देश को सही मायने में एक सूत्र में बाँधने का कार्य करता है। लोक संस्कृति से संबंधित गानों का महत्व इसलिए भी बढ़ा कि इसमें सच्चाई होती है, पीड़ा होती है, उल्लास होता है और यह हमारी संस्कृति की जड़ों से भी जुड़ी होती है। यही दर्द और उल्लास 'मदर इंडिया' के गीतों 'दुख भरे दिन बीते रे भैया, सुख के दिन आयो रे', 'पिय के घर आज प्यारी दुल्हनियाँ चली', 'घूँघट नहीं खोलूँगी सईया तेरे आगे आज मैं' में लोकधुनों का ऐसा सामंजस्य मिलता है जो आज भी सर चढ़कर बोलता है। 'हीर-रांझा' और 'लैला-मजनू'के गीतों में पंजाब की मस्ती दिखाई देती है तो 'बॉबी' (1973) के 'न मांगू सोना चांदी, न मांगू हीरा मोती', 'झूठ बोले कौआ काटे काले कौवे से डरियो' जैसे गीतों में गोवा के मछुवारों की बिंदास जिंदगी का रूप दिखाई देता है। 'नदिया के पार' (1982) के सभी गीतों, 'सांची कहे तोरे आवन से हमरे अंगना में आइल बहार भौजी, 'जब तक पूरे न हो फेरे सात तब तक दुल्हिन नहीं दूल्हा की', कौन दिशा में ले के चला रे बटोहिया जरा ठहर-ठहर ये सुहानी सी डगर' में अवधी और भोजपुरी के लोकगीत का पुट दिखाई देता है। हिन्दी सिनेमा के इसी रूप में समाज के अन्य राज्यों को भी हम आसानी से इन गीतों के माध्यम से समझ लेते है जैसे- 'मैने प्यार किया' के गीत 'कहे तोसे सजना तोहरी सजनियाँ' में पूर्वांचल की छाप दिखाई देती है तो 'चाँदनी' (1989) के गीत 'मैं ससुराल नहीं जाऊँगी डोली रख दो कहारो' 'लगी आज सावन की सुनहरी घटा है' में भी लोक संस्कृति की झलक दिखाई देती है। 'हिना' 'फिजा' और 'मिशन कश्मीर' के गीतों में कश्मीर की लोक धुन सुनाई देती है। 'शूल' के गीत 'दिलवालों के दिल का करार लूटने, आई हूँ यूपी बिहार लूटने' इसी तरह 'बंटी और बबली' का 'कजरारे-कजरारे तोरे कारे-कारे नैना' पर जहाँ पूर्वांचल का प्रभाव है तो 'देलही 6' के गीत- 'ससुराल गेंदा फूल' और 'मसकली-मसकली' पर छत्तीसगढ़ का प्रभाव है। दबंग के गीत 'मुन्नी बदनाम हुई' और 'ओमकारा' के गीत 'बीड़ी जाइले...।' 'दबंगब 2' के गीत 'फेविकौल से' और हाल ही में प्रदर्शित 'प्रेम रतन धन पायो' के गीत.... 'सईया तू कमाल का और तेरी बातें भी कमाल

की' पर भी लोकधुन की छाप दिखाई देती है।

हिन्दी सिनेमा ने जहाँ लोक संस्कृति को बढ़ाने में अपना योगदान दिया है ठीक उसी तरह लोक परम्परा, लोक-कला और लोक संस्कृति में हिन्दी सिनेमा के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज हिन्दी सिनेमा का प्रभाव ही है कि किसी खास जगह के लोक-त्यौहार और उत्सव भारत के हर हिस्से में मनाया जा रहा है। आज लोक संस्कृति को ध्यान में रखकर सिनेमा के पटकथा लिख रहे हैं तो यह भारतीय लोक संस्कृति के लिए सुखद अनुभूति है।

वस्तुतः हिन्दी सिनेमा शुद्ध मनोरंजन प्रधान होता है जिसमें दर्शकों की मांग का ख्याल रखा जाता है। हिन्दी सिनेमा का फलक इतना विस्तृत है कि वो संसार के सारे कलाओं को अपने आप में समाहित किए हुए है। हिन्दी सिनेमा के गीतों के मूल्यांकन का सवाल रहा है।

हिन्दी सिनेमा के बीच रचनात्मक, बहुआयामी, लोकप्रिय और प्रभावी होकर भी गंभीर चर्चाओं के दायरे में नहीं रहे हैं। हिन्दी सिनेमा की आत्मा गीतों में ही बसी है परन्तु हिन्दी फिल्मों के सफर में गीतों की गुणवत्ता समय के साथ बदलती रही है। जैसा कि अलीगढ़ में वीन पटेल से 'हिन्दी सिनेमा' पर हुई बातचीत में पद्म विभूषण 'गोपाल दास' 'नीरज जी' कहते हैं कि- "पहले फिल्मों के गाने अलग गाए जाते थे। गायक को शूटिंग के समय ही गाना पड़ता था। अब नई तकनीक का जमाना है, गायक अपने माफिक आते-जाते और गाते हैं फर्क ये पड़ा कि आज के गाने कब रीलिज हुए और कब लापता, कुछ पता नहीं चलता। बोल तक समझ नहीं आते गानों के। शुरूआती हिन्दी सिनेमा भले ही तकनीकी रूप से कमजोर था लेकिन कला में जान थी। साहित्कार ही फिल्मों के लिए लिखा करते थे। कविता सो उद्देश्य लिखी जाती थी। गाने भी शानदार होते थे। आज तो क्लासिकल पहलू गायब ही होता जा रहा है सिनेमा से। आज की फिल्मों में सेक्स जरूरी हो गया है, कुछ खुलापन पहले भी था लेकिन अब अति हो गई है। सब्जेक्ट का संकट है सिनेमाघर भी। नई पीढ़ी, समाज, बाजार, ड्रेस.. सब कुछ तो बदल रहा है फिर फिल्में कैसे खुद को बचा पाती। फिर भी हिन्दी सिनेमा के 100 साल की ये तारीख गवाही देती है कि अच्छी फिल्मों का दौर चूक नहीं गया है। आज भी अच्छी फिल्में बन रही हैं। कुछ नाम गिनाऊँ तो... 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस.', 'लगे रहो मुन्ना भाई', तारे जर्मी पर, 'थ्री इडियट्स' जैसी है ही। जल्दी ही फिल्मों के इस भोंडापन से लोग ऊब जाएंगे। नई सुबह ऐसी आएगी जब फिल्में फिर कहेंगी... 'ऐ भाई जरा देख के चलो....'

सन्दर्भ -

1. जनकृति अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका-वर्ष 3, अंक 25-26, मई-जून 2017
2. आजकलः मई- 2016
3. हिन्दी सिनेमा का सच- मृत्युंजय (वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज नई दिल्ली)
4. सिनेमा के चार अध्याय-डॉ. टी. शशिधन (वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज नई दिल्ली)
5. परिवर्तन- वर्ष-1, अंक-3, जुलाई-सितम्बर, 2016
6. परिकथा- वर्ष 12, अंक-71, द्विभाषिक, नवम्बर-दिसम्बर, 2017